# भारतीय साधना-पद्धति में गुरुतत्त्व का महत्व



—डा० न० चि० जोगलकर, (पूना)

पारमार्थिक जीवन के विकास के लिए सद्‌गुरु तत्त्व की असीम आवश्यकता है। सद्‌गुरु के अन्तःकरण में परमात्म-तत्त्व का दिव्य प्रकाश विद्यमान रहता है जिससे वह शिष्यों के अन्तःकरण में अज्ञान अन्धकार को दूर करने में सक्षम होता है। बिना सद्‌गुरु के पथ-प्रदर्शन के विकास संभव नहीं। जे. कृष्णमूर्ति जैसे आधुनिक चिन्तकों का यह भी मन्तव्य है कि आत्मज्ञान प्राप्ति हेतु गुरु की कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु यह कथन एक दृष्टि तक ही सीमित है। सामाजिक विषमता और राजनीति के दुश्चक्रों के कारण मानव-जीवन में अशांति, मत्सर, द्वेष, संघर्ष के बादल उमड़-घुमड़ कर मंडराने लगते हैं। ऐसी विषम और विकट परिस्थिति में मानव जीवन का महत्त्व समझना अधिक कठिन हो जाता है। आध्यात्मिक शांति, निर्भयता और तत्त्वज्ञान को रहस्य का परिज्ञान कराने वाले सद्‌गुरु की आवश्यकता होती है। सद्‌गुरु अशान्त मानव को शांति का पुनीत पाठ पढ़ाता है। उसे जीवन का सही लक्ष्य बताता है। इसी कारण अतीत काल से ही सद्‌गुरु का महत्व प्रतिपादन किया गया है। उसकी गौरव गाथा गायी गयी है।

ज्ञानदान देने वाले विद्यागुरु से लेकर मोक्ष प्रदाता सद्‌गुरु की महत्ता प्रतिपादन करने की आवश्यकता नहीं है। तथापि आधुनिक भौतिकवाद की चकाचौंध में भूले और बिसरे साधकों के अन्तर्मानस में यह प्रश्न अंगड़ाइयाँ लेने लगता है कि सद्‌गुरु की आवश्यकता क्यों है? चिन्तन करने पर परिज्ञात होता है कि प्रत्येक जीव को किसी भी विषय, वस्तु या पदार्थ का परिज्ञान स्वतः नहीं होता। स्वयं का परिश्रम, साधना व अध्यवसाय होने पर भी गंभीर एवं तात्त्विक ज्ञान प्राप्ति के लिए किसी न किसी से सहायता लेने की आवश्यकता होती है। जो सुयोग्य और सुचारुरूप से उसका पथ प्रदर्शन कर सके। ऐसा महान् व्यक्ति सद्‌गुरु देव के अतिरिक्त अन्य कौन मिल सकता है? सद्‌गुरु शिष्य का सही पथ-प्रदर्शन करता है, वह शिष्य की प्रसुप्त शक्ति को जागृत करता है। कबीर जैसे विशिष्ट साधक जो आँखन देखी पर विश्वास करने वाले थे, वे भी कहते हैं :—

**जाके गुरु भी आंधरा चरा खरा निरंध।**
**अंधे अंधा ठेलिया दोनों कूप पड़न्त॥**

चिन्तकों का कहना है कि साधक की योग्य परीक्षा कर गुरु बनाना चाहिए जिससे साधक का आध्यात्मिक विकास सम्यक् प्रकार से हो सके। सत्यान्वेषण करने वाले जिज्ञासु को किसी योग्य जानकार सद्‌गुरु की आवश्यकता है। परोक्ष या अपरोक्ष ज्ञानोपलब्धि सद्‌गुरु प्रदत्त साधना से ही सम्भव है; क्योंकि सद्‌गुरु ही प्रथम स्वयं सत्य का साक्षात्कार करता है, उसके पश्चात् शिष्य को अखण्ड सत्य के साक्षात्कार की पवित्र प्रेरणा प्रदान करता है। सद्‌गुरु द्वारा बतायी गयी राह पर चलते हुए साधकों ने अपने लक्ष्य को प्राप्त किया है। शिष्य को चाहिए कि सर्वप्रथम अहंकार का परित्याग करे और कर्तृत्वाभिमान को छोड़कर सद्‌गुरु का आश्रय ग्रहण करे। मन में जो भी शंकाएँ उद्‌बुद्ध हों उनका विनय के साथ सद्‌गुरु से निराकरण करे। यदि अन्तर्मानस में संशय बना रहा तो साधक का विनाश निश्चित है। **"संशयात्मा विनश्यति"** कहा गया है। एतदर्थ ही गीताकार ने कहा है—**"श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः"**। आत्मा परमात्मा आदि की गुरु-गंभीर गुत्थियाँ बिना गुरु पर श्रद्धा रखे सुलझ नहीं सकतीं। श्रद्धा के साथ इन्द्रियों पर संयम भी बहुत आवश्यक है। वीर अर्जुन श्रीकृष्ण के सत् शिष्य थे और मर्यादा पुरुषोत्तम राम वशिष्ठ के, शिवाजी रामदास के और चन्द्रगुप्त मौर्य चाणक्य के सत् शिष्य थे जिन्होंने गुरुओं के मार्गदर्शन पर चलकर सही प्रगति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की। आधुनिक युग में भी श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, महर्षि अरविन्द, महर्षि रमण जैसे मूर्धन्य मनीषियों ने साधना के क्षेत्र में सद्गुरु का महत्त्व सिद्ध किया है। सत्य की अन्वेषणा करने वाले शिष्य का संशय नष्ट हो जाता है, वह कर्मक्षय करता है, अविद्या और अहंकार का भंजन कर सद्गुरु उसे विवेक का संबल प्रदान करता है। एतदर्थ ही गीर्वाण गिरा के यशस्वी कवि ने सद्गुरु का महत्व प्रतिपादन करते हुए कहा है—

"भिद्यते हृदयग्रंथिः, छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि, तस्मिन् दृष्टे परापरे॥

तात्पर्य यह है कि विवेक से हृदयग्रंथि का छेदन हो जाने से निष्ठा पनपती है, संपूर्ण सन्देह नष्ट हो जाते हैं। कर्मों का क्षय हो जाने से द्रष्टा और दृश्य का सम्बन्ध जुड़कर आत्मा की सहज स्थिति और स्वरूप रूप जो सम्यक्ज्ञान है वह उपलब्ध हो जाता है। यह है सद्गुरु की महिमा। व्यवहार में सद्गुरु तराजू की तरह और परमार्थ में गंगा की निर्मल धारा की तरह शिष्य का उद्धार कर सकता है।[१] एतदर्थ ही सद्गुरु को शिष्यों में सद्गुणों का आरोपण करने के कारण उन्हें ब्रह्मा कहा है, शिष्य के सद्गुणों का संरक्षण करने के कारण उन्हें विष्णु कहा है और शिष्य में रहे हुए दुर्गुणों को नष्ट करने के कारण उन्हें शिवशंकर कहा है। सद्गुरु वस्तुतः साक्षात् परमब्रह्म है।[२] श्वेताश्वतर उपनिषद् में बताया है जैसे भक्त भगवान के साथ भक्ति करता है वैसे ही शिष्य को गुरु के प्रति हार्दिक भक्ति करनी चाहिए जिससे अध्यात्म ज्ञान की उपलब्धि होती है।[३] सन्त कवि कबीर के समक्ष एक महान समस्या उपस्थित हो गयी कि गुरु और गोबिन्द यदि एक ही साथ उपस्थित हो जायें तो किसके चरणों में प्रथम नमस्कार करना चाहिए। उन्होंने चिन्तन की गहराई में डुबकी लगायी। उन्हें स्पष्ट अनुभव हुआ कि प्रथम सद्गुरुदेव को नमन करना चाहिए। क्योंकि उन्हीं के कारण गोविन्द से साक्षात्कार हुआ है। सद्गुरु ने ही वह दिव्य दृष्टि प्रदान की जिससे गोविन्द का साक्षात्कार हुआ।[४]

हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि तुलसीदास ने रामचरितमानस में लिखा—कि मैं ज्ञानबोध प्रदान करने वाले शंकररूपी सद्गुरु को वन्दन करता हूँ, जिनके आश्रय को पाकर वक्र चन्द्रमा भी सभी के द्वारा अर्चनीय होता है। सद्गुरु जिसके संरक्षक हों उसे अन्य किसी की भी चिन्ता नहीं। सद्गुरु के अमृतोपम उपदेश से मोहान्धकार विनष्ट हो जाता है। सद्गुरु के पादारविन्दों से धूल भी फूल की तरह सुन्दर और सुगंधित बन जाती है। सद्गुरु का अनुराग ऐसी संजीवनी बूटी है जिससे भव-रोग नष्ट हो जाते हैं। उनके पुनीत स्मरण से ही हृदय में दिव्य आलोक प्रस्फुटित होता है।[५]

तुलसीदासजी ने 'विनयपत्रिका' में गुरु प्रदत्त साधना का महत्त्व बताते हुए लिखा है—इस कलिकाल में सद्गुरु ही ऐसे हैं जिनके द्वारा प्रतिपादित भक्ति-मार्ग ही साधक के लिए योग्य मार्गदर्शक है। सद्गुरुदेव के मंगलमय आशीर्वाद से सिद्धि प्राप्त होती है।[६]

सन्त चरणदास सद्गुरु के महत्त्व पर चिन्तन करते हुए लिखते हैं—परमेश्वर की सौ वर्षों तक सेवा करते रहने की अपेक्षा सद्गुरु की चार क्षण तक सेवा करना भी अधिक श्रेष्ठ है।[७]

मलूकदास का मन्तव्य है कि—आवागमन से मुक्त कराने वाले सद्गुरु है। वे जन्म-जन्मान्तरों की मनोकामना को परिपूर्ण करते हैं। अतः वे परमेश्वर से भी श्रेष्ठ हैं।[८]

हिन्दी साहित्य के कवियों में सूरदास का मूर्धन्य स्थान है। उन्होंने कृष्ण-लीला पर सवा लाख पद लिखे। किसी जिज्ञासु ने उनसे पूछा—आपने अपने गुरु वल्लभाचार्य का गुण-कीर्तन क्यों नहीं किया? उत्तर में उन्होंने कहा—मैंने जो कुछ भी वर्णन किया उसका सम्पूर्ण श्रेय सद्गुरुवर्य को ही है। मैंने सद्गुरु और श्रीकृष्ण को कभी पृथक नहीं देखा। मुझे गुरुचरणों में पूर्ण विश्वास हैं। उनके अभाव में मुझे सर्वत्र अन्धकार दिखायी देता है। सद्गुरु के अतिरिक्त विश्व में कोई भी उद्धारक नहीं है। इस तरह सूरदास ने सद्गुरु को भगवत्स्वरूप समझा है।[९] सद्गुरु भवसागर में डूबते हुए शिष्य को बचाता है और उसका उद्धार करता है।

भक्त कवयित्रियों में मीरा का नाम सर्वोच्च है। 'मीरा पदावली' में वह सद्गुरु के सम्बन्ध में लिखती है—कि मैं मोह की निद्रा में सोई हुई थी। कृपालु सद्गुरु ने मुझे जाग्रत किया। मुझे आध्यात्म ज्ञान प्रदान किया। मेरे सद्गुरु गुणों के सागर हैं। उन्होंने मेरे अवगुणों पर ध्यान न देकर मुझ पर स्नेह की सदा वृष्टि की। मुझे भवसागर से पार लगाया। अब मुझे गुरुचरणों के अतिरिक्त अन्य किसी की भी इच्छा नहीं है। सद्गुरु की कृपा से ही मुझे गिरधारी के दर्शन हुए हैं। हे सद्गुरु! तुम मुझे छोड़कर कभी मत जाना।[१०]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि सुन्दरदास ने भी सद्गुरु का महत्त्व बताते हुए लिखा है—सद्गुरु अपने शिष्य पर कभी रुष्ट नहीं होता और न कभी तुष्ट होता है। न वह किसी का पक्ष लेता है और न किसी पर ईर्ष्या ही करता है। वह प्रतिपल-प्रतिक्षण ब्रह्मभाव में लीन रहकर चिन्तन, मनन, निदिध्यासन करता रहता हैं। परब्रह्म के अतिरिक्त सद्गुरु के मन में और कोई विचार नहीं होता। -उनके सान्निध्य में रहनेवाले की आधि-व्याधि और उपाधियाँ नष्ट हो जाती हैं। सद्गुरु के प्रसाद से वैर-विरोध नष्ट होकर उसका सबके प्रति प्रेम उत्पन्न होता है। योगशास्त्र की सारी युक्तियाँ और प्रयुक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं और वह सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर लेता है।[११]

सद्गुरु की कृपादृष्टि से साधक को परा और अपरा विद्या की उपलब्धि होती है। 'बिन गुरु होई न ज्ञान' यह कथन यथार्थ है। गुरु केवल ज्ञान ही नहीं सिखाता अपितु योग उपासना, तंत्र व भक्ति की साधना का रहस्य भी बताता है और साधना किसप्रकार करनी चाहिए उसका प्रैक्टिकल प्रयोग भी सिखाता है। शिष्य को चाहिए कि अत्यन्त नम्र होकर सद्गुरु से अपने मन की जो भी शकाएँ हों उनका निरसन करे। मन में शँकाएँ रखना उचित नहीं है। सद्गुरु ज्ञानमूर्ति है। उसमें अनुभूति की प्रधानता होती है। अतः निरर्थक अहंकार में न उलझ कर जिज्ञासु बनकर वह ज्ञान प्राप्त करे। एतदर्थ ही कबीर ने कहा—"साधो, सो सद्गुरु मौहि भावे"। सद्गुरु अपने शिष्य का सदा विकास चाहता है। वह "**शिष्यादिच्छेत् पराजयम्**" की भावना रखता है। "**गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं**" कहा गया है। बिना सद्गुरु के भवार्णव को कोई भी पार नहीं कर सकता। सद्गुरु की महिमा अकथनीय और अवर्णनीय है।

बौद्ध तन्त्र साहित्य में करुणा को शिव और प्रज्ञा को शक्ति माना है। इसी तन्त्रमार्ग से विकसित होकर नवीं सदी में सहजयानी सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ जिसने शंकर पार्वती स्वरूप को स्वीकार किया। पार्वती को सृष्टि के बीज के विवरण को जानने की जिज्ञासा हुई तब शिवशंकर ने उसकी जिज्ञासा का समाधान किया। वही तत्त्व-ज्ञान नाथ सम्प्रदाय के नाम से विश्रुत हुआ। सहजयानी पंथ में संसार का स्वरूप भी सहज समझा गया। सरहपाद ने बताया कि इस सहजतत्त्व को मौन से ही जाना जाय और गुरुमुख से सुना जाय। नाथ सम्प्रदाय में गुरु का गौरव-पूर्ण स्थान है। सारी मध्ययुगीन साधनाओं और उनसे निःसृत भक्ति सम्प्रदायों में गुरु-भक्ति और गुरुमुख से प्राप्त ज्ञान-परम्परा को स्वीकार किया गया। यह कहा जा सकता है कि दसवीं सदी तक गुरुभक्ति का विकास हो चुका था। सरहपाद ने 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' गीतों के माध्यम से नाम-संकीर्तन को सहज सुलभ बनाया और नृत्य-गीतों के माध्यम से नाम-भक्ति का प्रसार किया। इस पंथ में बौद्धतंत्र की करुणा और प्रज्ञा को महत्वपूर्ण माना। यह कहा जा सकता है कि नाथ सम्प्रदाय में तत्त्वज्ञान की दृष्टि से बौद्ध तन्त्र के अनेक आचार-विचार तथा तत्त्वज्ञान के सूत्र अनुस्यूत हैं। नाथ सम्प्रदाय में सद्गुरु पर अत्यधिक निष्ठा है। नाथ सम्प्रदाय से भागवत, वारकरी सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ। इनमें तथा दत्त एवं समर्थ सम्प्रदाय के साधना मार्ग में भी सद्गुरु का महत्त्व एक स्वर से स्वीकार किया गया है।

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त एकनाथ ने लिखा है—यदि ग्रन्थ पढ़कर के शिष्य का उद्धार हो जाता तो बड़े-बड़े सद्गुरु क्यों अवतरित होते? ग्रंथों को पढ़कर जो शंकाएं अन्तर्मानस में उद्बुद्ध होंगी उनका समाधान ग्रंथ नहीं कर सकते। उनका समाधान सद्गुरु ही कर सकते हैं। गुरु के अनेकों शिष्य होते हैं, पर शिष्यों के लिए गुरु एक ही होता है। गुरुडम या गुरुबाजी के विरुद्ध सदा स्वर बुलन्द होते रहे हैं पर खेद है कि शिष्य जो अनुचित कार्य करते हैं उनके सम्बन्ध में आज तक किसी ने कुछ नहीं लिखा। आधुनिक युग में विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय करने की अतीव आवश्यकता है। यह आवश्यकता बिना सद्गुरु के कोई पूर्ण नहीं कर सकता।

जैन साधना पद्धति में गुरु का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। नमस्कार महामंत्र में गुरुतत्त्व की ही प्रधानता है। अरिहन्त और सिद्ध इन दो पदों में देव-तत्त्व की प्रधानता है तो आचार्य, उपाध्याय और साधु में गुरुतत्त्व की प्रमुखता है। सर्वप्रथम अर्हत को नमस्कार किया गया है और उसके पश्चात् सिद्धों को। सिद्ध अशरीरी होने से देह-धारी मानव को साक्षात् प्रेरणा प्रदान नहीं कर सकते। किन्तु अर्हत् देहधारी हैं इसलिए वे साक्षात् प्रेरणा देते हैं। अर्हत् पथप्रदर्शक हैं अतः उनका सर्वप्रथम स्थान है। एक दृष्टि से अर्हत् ही गुरु हैं, आचार्य, उपाध्याय और साधुओं के। आचार्य या गणधर, संघ संचालन करते हैं उपाध्याय संघ के श्रमणों को पढ़ाते हैं, साधु विशिष्ट साधक होते हैं। एतदर्थ ही वे गुरु के रूप में उपास्य रहे हैं। तात्त्विक दृष्टि से गुरु का स्थान निमित्त और उपादान के सिद्धान्त से निःसृत है। जैन दर्शन में निश्चय नय की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति अपना उद्धार करने में समर्थ है। उसको अनन्त सामर्थ्य प्रदान करने वाला गुरु केवल निमित्त है। प्रत्येक साधक को अपनी प्रगति स्वयं ही करनी होती है। श्रमण भगवान महावीर जैस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकर आदि विशिष्ट व्यक्तियों को गुरु की कोई आवश्यकता नहीं होती। जैन साहित्य में प्रत्येकबुद्ध का जो वर्णन है वह बहुत ही महत्वपूर्ण है। प्रत्येकबुद्ध बिना गुरु को निमित्त बनाये अपनी प्रगति स्वयं कर लेता है। गुरु अनिवार्य ही है ऐसा कोई शाश्वत नियम नहीं है। स्वयं साधक प्रबल पुरुषार्थ से अपनी प्रगति स्वयं करता है तथापि जैन साधना में गुरु का गौरव कम नहीं है। सामाजिक जीवन में गुरु की प्रतिष्ठा अनिवार्य है। चतुर्विध संघ की सुव्यवस्था गुरु करता है। पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, और पाँच आचार का पालन करने वाले, पाँच इन्द्रियों का संवरण करने वाले, नवविध ब्रह्मचर्य गुप्ति को धारण करने वाले और चार कषायों से विमुक्त इस प्रकार छत्तीस गुणों से युक्त व्यक्ति को सद्गुरु कहा गया है।

अष्टकर्म को नष्ट कर सिद्ध बनते हैं। अर्हन्त और सिद्ध में यही अन्तर है कि अर्हन्त, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय इन चार घनघाती कर्मों को नष्ट कर देते हैं जिससे वे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी बन जाते हैं। पूर्णज्ञान-दर्शन के धारक बनकर जन-जन का उपदेश द्वारा कल्याण करते हैं। अरिहन्त देहधारी होते हैं। जब सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जाते हैं तब अरिहन्त ही सिद्ध बन जाते हैं। सिद्ध निरञ्जन, निराकार, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त और निर्लिप्त होते हैं।

सारांश यह है कि भारतीय संस्कृति में फिर भले ही वह वैदिक संस्कृति हो, जैन संस्कृति हो या बौद्ध संस्कृति हो, सभी ने गुरु के गौरव की यशोगाथा गायी है। सद्गुरु, का जीवन एक विशिष्ट जीवन है जिसमें आचार की उत्कृष्टता के साथ ही विचारों की निर्मलता होती है। उसके जीवन का कण-कण, मन का अणु-अणु विश्वकल्याण के लिए समर्पित होता है। मैंने उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी के दर्शन किये थे। मुझे उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में सद्गुरु की विष्टिताओं के संदर्शन हुए, उनके सन्निकट बैठकर अपार आह्लाद का अनुभव हुआ। ऐसे विशिष्ट सन्त ही सद्गुरु की अभिधा के योग्य हैं। **'नास्ति तत्वं गुरोः परं'** जो कहा गया है वह अधिक सार्थक है। मैंने बहुत ही संक्षेप में गुरुतत्त्व पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। मेरा मानना है कि गुरु के बिना साधक को साधना के गुर प्राप्त नहीं हो सकते। कोई भी साधना बिना गुरु के अपना चमत्कार नहीं दिखा सकती। अतः सद्गुरु की महिमा जितनी भी गाई जाय उतनी कम है।

**सन्दर्भ एवं सन्दर्भ-स्थल**

१ व्यवहारौ मंत्र साम्यं भवेत् देशिकशिष्ययोः।
परमार्थे तु गुर्वाधीनः इति स्वमतनिर्णयः॥ —षष्टी १६

२ गुरुब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात् पांब्रह्मः तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

३ यस्य देवे पराशक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाश्यन्ते महात्मनः॥ —श्वेताश्वतर उपनिषद

४ गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपनै गोविन्द दिया बताय॥

५ (अ) वन्दे बोधमयम् नित्यं गुरु शंकररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोपि चन्द्रः सर्वत्र वंद्यते॥
× × ×

(आ) बन्दौ गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नर रूप हरि।
महामोहतम पुंज, जासु वचन रविकर निकर॥
× × ×

(इ) वन्दौ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचिर वास सरस अनुरागा॥
× × × ×

(ई) श्री गुरुपद नख मनिगन ज्योती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥
× × × ×

(उ) गुरुपदरज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिय दृग दोष विभंजन॥

—रामचरितमानस (बालकाण्ड ५-७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६ नाहिन आपात आन भरोसो।.....
गुरु कह्यो राम भंजन नी को मोहिं लागत राज-डगरो सो।

—विनयपत्रिका

७ हरि सेवा कृत सौ बरस, गुरु सेवा पल चार।
तो भी नहीं बराबरी, वेद न कियो विचार॥

८ आवागमन मिटाया सद्गुरु, पूजी मन की आसा।
जीवन्मुक्त किया परमेसुर कहत मलूकादासा॥

९ (अ) भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो।
श्री बल्लभ नख चंद-छटा बिनु सब जग मांझ अँधेरो।
साधन और नहीं या कलि में जासो होन निबेरो।
सूर कहा कहै द्विविध अंधेरो बिना मोल का चेरो॥

(आ) गुरु बिन ऐसी कौन करे।.....
सूर स्याम गुरु ऐसो समरथ छिन में ले उधरे॥

१० (अ) मीराँ सूती अपने भवन में
सतगुरु आय जगाओ। ज्ञानी गुरु आय जगायो॥
× × ×

(आ) सतगुरू म्हारा प्रीत निभाज्यो जी।
थे छो म्हाराँ गुणसागर औगण म्हारो मति जाज्यो जी॥
× × ×

(इ) मोही लागी लगन गुरु चरनन की।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर आस वही गुरु सरनन की॥

११ गुरु के प्रसाद बुद्धि उत्तम दशा को गहे, गुरु के प्रसाद, भव दुख बिसराइए।
गुरु के प्रसाद प्रेम प्रीतिहु अधिक बाढै, गुरु के प्रसाद, राम नाम गुण गाइए॥
गुरु के प्रसाद सब जोग जुगुति जानै, गुरु के प्रसाद, शून्य में समाधि लाइए।
'सुन्दर' कहत गुरुदेव जो कृपालु होइ, तिनके प्रसाद, तत्त्वज्ञान पुनि पाइए॥

—सुन्दरदास वाणी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org